Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. XI, Issue No. XXI, Apr-2016, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

गाँधी जी के आर्थिक विचार

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XI, Issue No. XXI, April-2016, ISSN 2230-7540

गाँधी जी के आर्थिक विचार

Sudesh Rani[1]* Dr. Sunil Jangir[2]

[1]Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2]Associate Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

इस संक्रमण काल की दौड़ में सारा संसार एक परिवार की भाँति सिमट कर रह गया है क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति और वैज्ञानिक प्रगति ने मानव को इतने सुलभ साधन उपलब्ध कर दिए हैं कि घंटों का काम मिनटों में हो जाता है लेकिन वैश्वीकरण के इस युग में मानव ने अपने मुनाफे के लिए असमानता की खाई खोद दी है औद्योगिक सभ्यता जो कुछ देने का वचन देती है वह तो प्रदान करती नहीं। वह मानव के लिए विष से अधिक कुछ नहीं है। इस सभ्यता की देन अनियन्त्रित उत्पादन, तकनीकी परिवर्तन और आधुनिक औद्योगिक पद्धति के विकास ने मानव के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी कर दी हैं, इससे अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब होते जा रहे हैं। औद्योगिक प्रणाली के नाम पर हमारे सामने जो कुछ प्रस्तुत किया जाता है उसका भयावह चित्र हमारे सामने है इसमें देश और देश के बीच तथा देश के अन्दर असमानता पैदा की है। अत्याधिक विशाल और निरन्तर पूंजीवादी देशों में इसके विकास ने अतिरिक्त मूल्य को ही बढ़ावा दिया है जो गरीब मजदूरों से इनको प्राप्त होता है। पूंजिवाद व साम्यवाद के विभिन्न रूप इस अन्तर को मिटाकर समानता लाने में असफल रहे। ई.एफ. शुमेरवर के अनुसार, ''यह वास्तव में एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि वर्तमान अर्थशास्त्र की परम्परागत बुद्धिमता भी निर्धनों की कोई सहायता नहीं कर सकती।''[1]

इन्हीं विसंगतियों से भरे मानवीय जीवन में गांधी प्रगति दर्शन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होना अनिवार्य है। गांधी जी ने ऐसे में अपने आर्थिक सम्बन्धी सिद्धान्त प्रतिपादित किए जो देश और समाज के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इन सिद्धान्तों में संरक्षकता, स्वदेशी, विकेन्द्रीयकरण आदि प्रमुख हैं। जो अर्थव्यवस्था को एक सुदृढ़ आधार प्रदान कर सकता है।

गांधी जी का संरक्षकता सिद्धान्त :

गांधी जी के संरक्षकता के सिद्धान्त से पहले संरक्षकता के अर्थ को समझना हमारे लिए जरूरी है।

न्यासिता शब्द अंग्रेजी के 'ट्रस्ट' शब्द से बना है जो विधिवेताओं के द्वारा सामान्यतया व्यवहत होता है। न्यास में जमीन, किसी चीज को कोष, शेयर आदि रखे में जाते हैं। न्यास की अवधारणा जमीन और व्यवहार की अन्य सम्पत्ति को किसी के यहां सुरक्षित रूप से रखने के रीति रिवाज से हुई। अंग्रेजी कानून के मुताबिक सम्पति के उपभोग तथा उपयोग के विषय में अनेक सिद्धान्त निकाले हैं। इसमें न्यास का अर्थ यह हुआ कि कोई सम्पति जो किसी के स्वामित्व में है वह दूसरे के नियन्त्रण में उसकी मर्जी से उसके लाभकारी उपयोग के लिए दी जाती है।[2]

भारत में न्यासिता की उत्पत्ति 'ईशोपनिषद' से हुई है। भारतीय सम्बन्ध में न्यासी का उपयोग मन्दिरों व मठों के सन्दर्भ में किया जाता है। न्यासी का मतलब किसी ऐसे व्यक्ति से होता है जो मन्दिर की सम्पत्ति का संचालन बिना किसी निहित स्वार्थ के करता है। देवदत दा भोलकर के अनुसार कि, ''बिना किसी प्रतिपादन की अपेक्षा के विशेषाधिकार, शक्ति, पद व प्रतिष्ठा का स्वैच्छिक परित्याग ही न्यासिता है।''[3] भारत के धार्मिक ग्रन्थ ऋग्वेद में भी यह कहा गया है कि ''जो व्यक्ति अकेला खाता है वह चोर है।''[4] ईशावास्य उपनिषद् ग्रन्थ के प्रथम श्लोक की पंक्ति में 'तेन व्यक्तेन भुंजीयाः' ही संरक्षकता का मूल सिद्धान्त है। यानि त्याग की वृति से ही भौतिक वस्तुओं का भोग करना। संसार की सभी वस्तुएँ परमेश्वर की देन हैं उसी की कृपा के प्रसाद रूप में हम इसका इस्तेमाल करें, निजी माल्कियत समझ कर नहीं। हमारे जीवन को ठीक तरह से संचालित करने के लिए जितना भोजन, वस्त्र, आवास आदि की जरूरत है उतना ही हम उपयोग करें और शेष धन भगवान को या समाज को अर्पित कर दें। 'मा गृद्यः कस्यस्विद्धनम्' दूसरे के धन की कभी लालसा न करें।[5] गांधी जी ने इस श्लोक के विषय में कहा था कि भारत के सब धर्म ग्रन्थ यदि समुद्र में डूब जायें और यह एक श्लोक ही बच जाए तो भी मानवता का उद्धार करने की क्षमता इसमें है। इस श्लोक में संरक्षकता का सम्पूर्ण विचार समाया हुआ है।[6]

भारतीय पुराण साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि सम्पति, राजपाट आदि के प्रति क्या

---

1 अलका अग्रवाल व शिखा अग्रवाल, *गांधी दर्शन विविध आयाम,* पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2007, पृ. 115.

2 तत्त्वमसि, *महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त,* राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 11

3 सुरजीत कौर जौली, *गांधी एक अध्ययन,* कन्सैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007, पृ. 239–40

4 दूध नाथ चतुर्वेदी, *महात्मा गांधी जी का आर्थिक दर्शन,* कांशी विद्यापीठ मुद्रणालय, वाराणसी, 1965, पृ. 288

5 मुन्नारायण, ''सर्वभूमि गोपाल की,'' *गांधी–मार्ग,* अंक'1, अप्रैल, 1970, पृ. 14

6 नरेन्द्र दुबे, *ट्रस्टीशिप सिद्धान्त और व्यवहार,* डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1991, पृ. 37

www.ignited.in

भावना होनी चाहिए। राजा जनक और भरत उत्कृष्ट संरक्षक कहे जा सकते हैं।[7]

सरंक्षकता के बारे में गांधी जी के जो विचार हैं उनकी कल्पना 1300 वर्ष पूर्व भी की गई थी। पवित्र ग्रन्थ हदीस में इस आश्य का पद्य है लोगों के पास जो कुछ धन दौलत है वह मेरी सम्पत्ति है, क्योंकि गरीब मेरे बच्चे है और धनी उनके पास जो धन दौलत है उसके संरक्षक। इसलिए जो धनवान मेरे गरीब बच्चों की ओर से खर्च नहीं करेंगे उन्हें मैं नरक में भेज दूंगा, जहां उनकी कोई सास्सम्हाल नहीं होगी।[8]

इस प्रकार प्राचीन समय से ही सन्तों ने, धर्म संस्था ने और ज्ञानियों ने अपनी–अपनी तरह से दर्शाया है कि व्यक्ति और समाज का सम्पत्ति के प्रति क्या दृष्टिकोण होना चाहिए।

प्रत्येक देश व समाज की अपनी विशेषताएँ होती हैं। भारतवर्ष में एक पुरातन देश है और यहाँ की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन होने के कारण यहाँ की सामाजिक व्यवस्था उसके सामाजिक आदर्श व मर्यादाएँ अपनी विशेषताएं रखते हैं। किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली में आर्थिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारतीय समाज पर जो पश्चिमी लोकतन्त्र की प्रणाली अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर थोपी गई थी उससे भारतीय समाज में अनेक बराईयों का जन्म हुआ। महात्मा गांधी ने इन बुराईयों को निकट से देखा और यह अनुभव किया कि आज समाज का पतन हो रहा है उसका मूल कारण भेदभावपूर्ण वर्तमान आर्थिक व्यवस्था है। इस प्रकार गांधी जी ने विभिन्न समस्याओं और परिस्थितियों को समझकर और वर्तमान समाज की दुर्दशा देखकर एक नया सिद्धान्त पेश किया। उसके आर्थिक सिद्धान्त ने भारतीय समाज की ही नहीं बल्कि विश्व समाज की राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए एक मन्त्र प्रदान किया।

गांधी जी ने 1903 में संरक्षकता के सिद्धान्त के बारे में अपने विचार दिए। इसके बाद भी गांधी जी ने इस सिद्धान्त के बारे में विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में अपने लेखों के द्वारा जनता के सामने विचार प्रकट किए। गांधी जी के अनुसार ''संरक्षकता का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है जिसके पास धन है वह उसे अपना समझकर फिजूल खर्च न करे। संरक्षक समझकर रखे और लोक कल्याण या समाज हित में उपयोग करे। इसका आश्य यह है कि जब तक धनिक वर्ग स्वेच्छापूर्वक अपना धन त्याग नहीं देता या समाज की भलाई में नहीं लगता तब तक अहिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा उनका हृदय परिवर्तन के लिए प्रयास करने चाहिएं और धनी वर्ग यदि जन सामान्य की तरह रहते हैं या कम खर्च करते हैं, अपने धन का उपयोग समाजहित में करते हैं तो जनता के संरक्षकता की भावना रखने वाला व्यक्ति लोगों को दबाकर और उनका शोषण करके धन कमाने का प्रयत्न नहीं करता है। वह आगे यह भी कहता है कि मैं धनिक वर्ग के धन का शक्ति से अपहरण करने का समर्थक भी नहीं हूँ बल्कि शान्तिपूर्ण तरीके से अहिंसात्मक साधनों से पूंजिपतियों के हृदय परिवर्तन के द्वारा धन का प्रयोग समाज के हित में करने का पक्षधर हूँ।[9]

गाँधी जी पूंजिवाद को समाप्त करने के लिए साम्यवादियों से भी ज्यादा उत्सुक हैं। लेकिन उसका पूंजिवाद को समाप्त करने का तरीका अलग है वह संरक्षकता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त उच्च चरित्र की निशानी है और मनुष्य को यह जानकारी देता है कि वह मनुष्य पहले है और सेठ–साहूकार बाद में। गांधी जी के संरक्षकता के सिद्धान्त की परिभाषा देवदत्त डबहोलकर ने शब्दों में, ''बिना किसी चीज की लालसा रखते हुए अधिकरों, शक्ति और प्रसिद्धि का ऐच्छिक त्याग करना संरक्षकता का सिद्धान्त है।[10]

के. अरूणाकलम के अनुसार, ''संरक्षकता एक व्यक्ति में निहित विश्वास, सम्पत्ति के सन्दर्भ में जो उसके पास है और जिसने भी वह अपना अधिकार रखता है उसका उपयोग वह अपने लाभ के लिए न करके दूसरों की भलाई के लिए करता है।''[11]

गांधी जी का सरंक्षकता का विचार ऐसी सीमित कानूनी व्याख्या से अधिक व्यापक और गम्भीर है। गांधी जी किसी व्यक्ति को सम्पत्ति का स्वामी नही मानते, वह ईश्वर को ही सम्पत्ति का स्वामी मानते हैं। मनुष्य के विकास की दृष्टि से सम्पत्ति को बहुत तुच्छ चीज मानते हैं। सम्पत्ति सेवा के लिए है और उसकी व्यवस्था इस प्रकार की जाए कि व्याख्या करने वाले मनुष्य का अध्यात्मिक विकास हो, वह अपनासक्त भाव से सम्पत्ति को ग्रहण और उपयोग करे गांधी जी द्वारा दिए सम्पत्ति के सिद्धान्त के मूल तत्व हैं :–

1. मानव के अस्तित्व का मुख्य उद्देश्य सम्पत्ति नहीं है और न कुछ सामाजिक कर्त्तव्यों की पूर्ति मात्र है, वरन् आध्यात्मिक विकास है।

2. जीवन में सम्पत्ति का स्थान अवश्य है लेकिन उसका मालिकी और भोग के अधिकार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

3. सम्पत्ति रखने का उद्देश्य संग्रह वृति के संतोष के लिए न होकर, मानवीय सुख और व्यक्तित्व का विकास हो।

4. धन सम्पति की ही तरह मनुष्य का कोई शारीरिक और बौद्धिक गुण हो सकता है इसे भी वह ईश्वर या प्रकृति प्रदत्त माने और समाज से उसे यह गुण मिला है यह भावना रखकर और समाज के कल्याण के लिए संरक्षक की तरह अपने गुण और शक्ति का उपयोग करें।[12]

गांधी जी के संरक्षकता के सम्बन्ध में समय–समय पर विचार व्यक्त किए लेकिन सन् 1945 में प्रो. दॉतवाला, श्री किशेर लाल मश्रुवाला तथा नरहरि पारिख ने उनके सामने सरंक्षकता की व्यावहारिक व्याख्या की एक प्रति तैयार करके गाांधी जी को दी जिसमें गांधी जी ने कुछ संशोधन किए और उसे अन्तिम रूप दिया। यह व्यावहारिक व्याख्या इस प्रकार है।

1. सरंक्षकता एक ऐसा साधन प्रदान करती है, जिससे समाज की मौजूदा पूंजिवादी व्यवस्था समतावादी व्यवस्था में बदल जाती है। उसमें पूंजिवाद की तो गुंजाइश नहीं है। उसका आधार यह श्रद्धा है कि मानव स्वभाव ऐसा नहीं है जिसका कभी उद्धार ही न हो सके।

---

7 सुरिनी इन्दिरा, *गांधीयन डावट्राइन ऑफ ट्रस्टीशिप*, डिस्करी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ. 37

8 *हरिजन सेवक*, 30 सितम्बर, 1939, पृ. 263

9 दूधनाथ चतुर्वेदी, *पूर्वोक्त–4*, पृ. 295

10 देवादत्त डाबोलकर, ट्रस्टीज–ए ब्लांइड एलेय और एब्रीकथ्रो, *गांधी मार्ग*, वॉल्यूम 8–9, नव.–दिस., 1985, पृ. 588

11 के.अरूणाकलम, *अप्लाईड ट्रस्टीशिप*, गांधी मार्ग, वॉल्यूम 8–9, नव. –दिस., 1985, पृ. 621

12 *वही*, पृ. 59

2. वह सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व का कोई अधिकार स्वीकार नहीं करती, हाँ उसमें समाज अपनी भलाई के लिए किसी हद तक इसकी इजाजत दे सकता है।

3. उसमें धन के स्वामित्व और उपभोग के कानूनी नियम की मनाही नहीं है।

4. इस प्रकार राज्य द्वारा नियन्त्रित संरक्षकता में कोई व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए या समाज के हित के विरूद्ध सम्पत्ति पर अधिकार रखने या उसका उपभोग करने के लिए स्वतन्त्र नहीं होगा।

5. जिस तरह उचित न्यूनतम जीवन वेतन स्थिर करने की बात कही गई है, ठीक उसी तरह यह भी तय कर दिया जाना चाहिए कि वास्तव में किसी भी व्यक्ति की ज्यादा से ज्यादा आमदनी कितनी हो। न्यूनतम और अधिकतम आमदनीयों के बीच का फर्क उचित, न्यायपूर्ण और समय–समय पर इस प्रकार बदलता रहने वाला होना चाहिए कि उसक झुकाव इस फर्क को मिटाने की तरफ हो।

6. गांधीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्वरूप समाज की जरूरतों से निश्चित होगा, न कि व्यक्ति की सनक या लालच से।[13]

पूंजिवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व, व्यक्गित सुविधा, आराम, प्रतिष्ठा रक्षण आदि के लिए सम्पत्ति का संचय करने, मुनाफा कमाने की प्रेरणा, सेवा, योग्यता, परिश्रम आदि। सबका मूल्यांकन पैसे के आधार पर भाव, कम ज्यादा करने के लिए एकाधिकार की प्रवृति, सस्ते कच्चे माल की उपलब्धि और पक्के माल की खपत के लिए बाजारों पर नियन्त्रण रखने के अनेक तरह के उपाय अपनाये जाते हैं। पूंजिवादी अर्थव्यस्था में राज्य के हस्तक्षेप का निषेध किया जाता है क्योंकि यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के खिलाफ माना जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पूंजिपति वर्ग की राज्य की नीतियों का संचालन करने लगता है।

उपाध्याय, राम नारायण (2015). **''गांधी विचार यात्रा'',** भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली.

अय्यर, राघवन (1997). **''दि मोरल एण्ड पोलिटिकल वार्निंग ऑफ महात्मा गांधी''**, कलारदन प्रैस, आक्सफोर्ड.

आनन्द, वाई.पी. (2015). **''नॉनवायलंस इॅन ए वायलंस वर्ड ए गान्धीयन रीसपोंस''**, गांधी स्मृति एण्ड दर्शन समिति, न्यू दिल्ली.

अग्रवाल, अलका एवं अग्रवाल, शिखा (2015). **''गांधी दर्शन (विविध आयाम)''**, पोइन्टर, पब्लिर्शस, जयपुर.

Corresponding Author

Sudesh Rani*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

E-Mail – ashokkumarpksd@gmail.com

[13] एम.के. गांधी, *ट्रस्टीशिप,* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद,